

हमारा कवि 'विद्रोही'

अनवर सुहैल

'तुम्हारे मान लेने से / पत्थर भगवान हो जाता है,
लेकिन तुम्हारे मान लेने से / पत्थर पैसा नहीं हो जाता।'

ये पंक्तियां कोई मस्त फक्कड़ मलंग-फकीर या कबीर ही लिख सकता है। जब-जब सारा संसार धारा के अनुकूल तैरने का अभ्यस्त होता है कोई कबीर पैदा होता है और धारा के विपरीत तैरने का दुस्साहस दिखाता है। ऐसे समय में उस वक्त के सयाने उसे विक्षिप्त, बौराया हुआ या पागल तक कह डालते हैं। क्योंकि मस्त कबीर जोड़ता है सिर्फ चलन से खारिज चीजों को...इकट्ठा करता जाता है सच्चाई, मासूमियत, ईमानदारी, नैतिकता, दृढ़ता और कभी भी किसी भी दशा में न टूटने का संकल्प। इन्हीं पूंजी के सहारे वह काट लेता है अपनी जून कि अपने आप से किसी एकांत में जब कोई बातें करे तो उसे याद करे। अपने समय के कबीर को याद करे लेकिन सिर्फ एकांत-साधना के समय में ही। सार्वजनिक जीवन में इंसान अपने हित साधने का भगीरथ प्रयास करता है। शायद इसीलिए अपने समय के कबीर अपने समय में पहचाने नहीं जा पाते हैं।

कोई विद्वजन नहीं लिखता ऐसे कबीर के बारे में, क्योंकि वह लीक पर चलने वाला व्यक्ति नहीं है और शायद इसीलिए वह हमारा कवि है। कोई विद्वजन नहीं जिक्र करता उसके बारे में क्योंकि वह समझौतों की बात नहीं करता बल्कि बनी-बनाई स्थापनाओं से विद्रोह उसका मूल भाव है। कोई विद्वजन किसी अकादमिक सम्मान के लिए उसके नाम की संस्तुति नहीं करता क्योंकि भाषा और शिल्प की जादूगिरी में यकीन नहीं रखता। वह नहीं मानता कविता की बनी-बनाई परिभाषाओं को, जब वह जेएनयू कैम्पस की जंगल-झाड़ियों में रात गुज़ारकर अलसुबह गंगा ढाबा में विद्यार्थियों के बीच किसी तपस्वी सा प्रकट होता है तो जैसे विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों से आए विद्यार्थियों के मन-मस्तिष्क में एक नई विद्रोही राजनीतिक चेतना के बीज अंकुरित होने लगते हैं।

रमाशंकर यादव 'विद्रोही' कोई सिविल-सर्विस कवि नहीं थे, कोई राजपत्रित अधिकारी कवि नहीं थे, कोई प्राध्यापक कवि नहीं थे बल्कि व्यवस्था के विरुद्ध शंखनाद फूंकते युग-प्रवर्तक कवि थे। विद्रोही जो निरंतर आम-जन की बात आम-फहम भाषा में कहते थे और मुक्तिबोध के इस पार्टनर की पोलीटिक्स क्लीयर थी, वह दोमुंहे नहीं थे।

कहने वाले लोग कहां बाज़ आते हैं और बहुत ठीठ होकर कहते हैं कि यदि विद्रोही जी इतने ही प्रासंगिक और जीवंत कवि थे तो जीते जी उनका इस तरह बखान क्यों नहीं हुआ? मेरे ख्याल से ये हिन्दी समाज का दिमागी दिवालियापन है जो देश के सबसे बड़ी एकादमिक संस्थान के कई पीढ़ियों के विद्यार्थियों के बीच किसी तपस्वी की तरह जीवन गुज़ारने वाले, विद्यार्थियों की सभाओं में चेतना और जोश का बिगुल फूंकने वाले रमाशंकर यादव विद्रोही को लगातार इग्नोर किया गया। उनकी कविताओं को संरक्षित करने का या उनके जीवन-काल में उनकी रहस्यमयी उपस्थिति का सांस्थानिक या अकादमिक तौर पर कहीं भी मूल्यांकन नहीं किया गया, जबकि विद्रोही जी लगातार अपनी तेजस्वी मुद्रा और ओजमयी वाणी से कंठस्थ कविताओं का वाचन प्रभावशाली ढंग से आजीवन करते रहे।

विद्रोही बहता हुआ पानी थे और इसीलिए रूके हुए पानी की सड़ांध से आज़ाद थे। विद्रोही की वैचारिक गतिशीलता ही उन्हें नवजवानों के बीच बहुश्रुत बनाए हुए थी। निस्संदेह जेएनयू कैम्पस में देश की चुनिंदा प्रतिभाएं उच्च शिक्षा के लिए जगह पाती हैं। जेएनयू के छात्र कुछ भी, कैसा भी, कभी भी, स्वीकार नहीं करते बल्कि वे प्रश्न करना जानते हैं। वे कोई तेल इसलिए अपने सिर पर घिसने को तैयार नहीं होते हैं कि इस तेल का विज्ञापन कोई महानायक कर रहा है! ऐसे जिज्ञासु

छात्रों के बीच रहकर अपनी वैचारिक ऊर्जा से विद्रोही या यूं कहें स्वतंत्र-चेता युवकों की खेप तैयार कर रहे थे विद्रोही। शायद यही कारण है कि उनकी कविताओं के प्रकाशन का प्रश्न हो या उनके जीवन पर वृत्त-चित्र बनाने का निर्णय... छात्रों ने स्वमेव विद्रोही जी को धरती के धरोहर की तरह सहेज कर रखा है।

बेशक, विद्रोही कोई प्रायोजित कवि नहीं थे कि वातानुकूलित सभागारों में लाईम-लाईट के बीच भरपेट-अघाए हुए चुनिंदा श्रोताओं के बीच काव्य-पाठ करना है। विद्रोही को ये भी नहीं सोचना है कि कैसी सभा है, कैसे श्रोता हैं, कैसा उनका टेस्ट है और कैसी कविताएं पढ़नी या सुनानी हैं जो प्रभावकारी हों। विद्रोही के श्रोता बड़ी जिज्ञासा से सुनते हैं अपने कवि की बातें जो कहीं से भी अतिरंजित नहीं होतीं और उनकी कविताएं अपने समय के ऐसे तमाम प्रश्नों से जूझती हैं जिन प्रश्नों के जवाब स्वयं श्रोता भी खोज रहे होते हैं। विद्रोही सिर्फ प्रश्न नहीं उठाते बल्कि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उन प्रश्नों के सम्भावित जवाब भी कविता ही में खोज लाते हैं। श्रोता मंत्रमुग्ध उनकी कविता के चमत्कार से अपने मन में उपजे सवालों के जवाब खोजने में मशगूल हो जाता है। श्रोताओं की तन्मयता देखते बनती है। मैंने यूट्यूब की छानबीन की तो पाया कि विद्रोही जी को यूट्यूब पर लगभग सत्तर हज़ार बार देखा/सुना गया है ठीक उसी के बरअक्स अकादमियों और साहित्य समितियों के नुमाइंदे स्टार कवियों के यूट्यूब क्लिपिंग्स को मुश्किल से एक हज़ार बार देखा गया है। क्या ये पैमाना यह साबित नहीं करता कि हमारे युग में कविता के श्रोता/पाठक विद्रोही जी से कितना प्रभावित हैं और दीगर कवियों से कितना। मैं बड़े ध्यान से यूट्यूब की क्लिपिंग्स को देखता हूँ। उस ओजस्वी जनकवि को देखता हूँ और बार-बार उन श्रोताओं के चेहरे को भी देखता जाता हूँ जिनकी निगाहें विस्फारित हैं। जिनके चेहरों पर चिंताएं हैं और माथे पर शिकन। जिनके दिलो-दिमाग में उठ रही हलचल उनके चेहरे पर आती-जाती हैं। ये नवजवान श्रोता अपने समय के सवालों को जानना चाहते हैं और उनके सम्भावित जवाबों को भी तलाशते हैं। विद्रोही की कविताएं उनके सवालों से तादात्म्य स्थापित करती हैं। विद्रोही की कविताओं के शब्द, बिम्ब, प्रतीक और शिल्प विधान इस तरह प्रभावकारी है कि सीधे श्रोता से कनेक्ट होता है। विद्रोही की कविताओं में उपजे विचार

आरोपित नहीं हैं। विद्रोही किसी राजनीतिक दल के भोंपू नहीं हैं। वे सभी से प्रश्न करते हैं। उनके प्रश्न हमेशा की तरह वायुमण्डल में अनुत्तरित गूँजते रहते हैं।

विद्रोही किसी गमले में खिले फूल का नाम नहीं है दोस्तों! विद्रोही का कवि प्रतिकूल परिस्थितियों में उपेक्षा का शिकार होकर भी पूरी गरिमा के साथ खिलता है। विद्रोही पागल नहीं थे बल्कि हर दौर में अपने समय के महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर खोजने वालों को व्यवस्था पागल करार देती है।

प्राध्यापक क्या अपने समय के इस लोकप्रिय कवि की प्रतिभा से डरते थे जो लामबंद होकर उन्हें विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया? हिन्दी के प्रकाशक जो आए दिन सर्वश्रेष्ठ साहित्य के प्रकाशन का दम भरते हैं क्या उन्हें विद्रोही की कविताओं की सुध ली कभी कि ऐसे स्वाभिमानी, लोकप्रिय, बहुश्रुत जनकवि विरले ही पैदा होते हैं जो ये कहने का साहस रखते हों कि-

मेरी कविता वस्तुतः लाठी ही है,

इसे लो और भांजो!

मगर ठहरो!

ये वो लाठी नहीं है जो

हर तरफ भंज जाती है,

ये सिर्फ उस तरफ भंजती है

जिधर मैं इसे प्रेरित करता हूँ।

मसलन तुम इसे बड़ों के खिलाफ भांजोगे

भंज जाएगी।

छोटों के खिलाफ भांजोगे

न, नहीं भंजेगी।

तुम इसे भगवान के खिलाफ भांजोगे,

भंज जाएगी।

लेकिन तुम इसे इंसान के खिलाफ भांजोगे

न, नहीं भंजेगी।

कविता और लाठी में यही अंतर है।

कौन कवि है जो स्त्रियों के प्रति इतने उदार विचार रखता है कि पुरुषों के बनाए शास्त्र और व्यवस्थाएं एकबारगी कांप उठती हैं। विद्रोही की कविता में मां, बेटी, दादी, नानी, रानी, नौकरानी जैसी स्त्रियां जैसे कोई फरियादी बनकर आती हैं। विद्रोही स्त्री चेतना को

झकझोरना चाहते हैं कि पुरुष-शासित समाज में स्त्रियां क्यों खुद को छुई-मुई बनाकर प्रस्तुत करती रहेंगी? पुरुष तो धर्म से, तर्क से और राजनीति से स्त्री के शोषण के असंख्य औज़ार इकट्ठा करता रहता है और दमन, उत्पीड़न को जैसे स्त्री खुद ही सुहाग-भाग मान लेती है।

‘जबकि मर्दों को रोती हुई स्त्री को मारना भी बुरा नहीं लगता

औरतें रोती जाती हैं, मरद मारते जाते हैं

औरतें रोती हैं, मरद और मारते हैं

औरतें खूब जोर से रोती हैं

मरद इतनी जोर से मारते हैं कि वे मर जाती हैं....’

कितनी भावपूर्ण पंक्तियां हैं। जेएनयू जैसी स्वतंत्र चेता संस्था में रहते हुए भी विद्रोही स्त्री के लगातार होते जा रहे शोषण से अनभिज्ञ नहीं है और बड़ी मासूमियत से स्त्रियों को सचेत-सजग और लोक-शिक्षित भी करने का प्रयास करते हैं।

भारत देश में गंगा-जमुनी तहज़ीब पर मैंने अपने जीवन में विद्रोही से अच्छी पंक्तियां कभी नहीं पढ़ी हैं। नूर मियां जैसा विलक्षण चरित्र जैसे कविता में औपन्यासिक विस्तार पाता है और नानी की आंखों में लगा सूरमा सौंदर्य-शास्त्र की कितने पृष्ठ पलटने को मजबूर करता है।

क्या विद्रोही के अलावा किसी और कवि ने इस महादेश में ये पंक्तियां लिखी हैं या लिखने का साहस दिखलाया है?

और वही नूर मियां पाकिस्तान चले गए

क्यूं चले गए पाकिस्तान नूर मियां

कहते हैं कि नूर मियां का कोई था नहीं

तब, तब क्या हम कोई नहीं होते थे नूर मियां

के ?

नूर मियां क्यूं चले गए पकिस्तान ?

बिना हमको बताये

बिना हमारी दादी को बताये

नूर मियां क्यूं चले गए पकिस्तान?

एक साथ ढेर सारे प्रश्न...जैसे क्यूं चले गए पाकिस्तान नूर मियां। है कोई जवाब इस पंक्ति का? कौन देगा जवाब। सब कहते हैं कि कुछ सवाल ऐसे होते हैं जिनके जवाब खोजे नहीं जाते और ऐसे सवाल बिना जवाब

पाए सदियों आकाश में टंगे रहने को अभिशप्त रहते हैं। फिर विद्रोही सवाल करते हैं-‘तब, तब क्या हम कोई नहीं होते थे नूर मियां के?’ फिर एक अटपटा और बगलें झांकने को मजबूर करता प्रश्न...

अभी इन प्रश्नों से जूझ ही रहा हो इंसान कि विद्रोही बताने लगते हैं किसी शिकायत की तरह -- ‘बिना हमको बताए / बिना हमारी दादी को बताए / नूर मियां क्यूं चले गए पाकिस्तान?’

हिन्दू-मुस्लिम सवालों को राजनीति बनाए रखना चाहती है ताकि चुनाव की खेती की जा सके और मज़हब का ध्रुवीकरण करके वोटों की फसल काटी जा सके। विद्रोही की चेतना में अब जब सब एक मिली-जुली तहज़ीब का हिस्सा बन ही गए हैं तब चाहते हैं कि इस विविधता को एक शक्ति की तरह उपयोग किया जाए और एक स्वस्थ समाज का निर्माण हो। इधर लोग हैं कि इस विविधता को विध्वंसक हथियार बनाए हुए हैं। बहुरंगी सोच को घातक ठहराया जा रहा है और एकरंगी समाज की स्थापना करने के लिए जैसे विद्रोही को छोड़ सारा देश एकजुट है। शायद इसीलिए ऐसे खतरनाक प्रश्नकर्ता कवि का बोध-जगत से चले जाना ही राहत देने वाली खबर है उन लोगों के लिए ‘जो अभी नहीं तो कभी नहीं’ जैसी इच्छा-शक्ति के साथ आमूल-चूल परिवर्तन का यज्ञ करना चाहते हैं।

धर्म और राज्य जैसी संस्थाओं ने स्त्रियों के साथ, दलितों के साथ, वंचितों के साथ जाने कितने अत्याचार किए हैं। इसीलिए विद्रोही कवि इस ऐतिहासिक षडयंत्र को बेनकाब करते हैं---‘ मैं एक दिन पुलिस और पुरोहित /दोनों को एक साथ /औरतों की अदालत में तलब करूंगा...’

कोई भलामानस प्रश्न करेगा कि भई काहे तलब करोगे। कवि कितना भी चेताए लेकिन उसे मालूम है कि ये पब्लिक है जो एकदम भेड़-बकरी की तरह होती है। इन्हें कितनी भी वैचारिक ऊर्जा दी जाए, कितना सहयोग किया जाए ये हर हाल में आत्मोसर्ग भले से कर देंगी लेकिन अपने हक के लिए आवाज़ बुलंद नहीं करेंगी।

विद्रोही भांप लेते हैं कि इन शोषितों के सामने गलत हो रहा होता है और ये देखते ही रह जाते हैं। कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो दुबक जाते हैं, छुप जाते हैं और आंधी के निकल जाने या ठण्डा जाने की प्रतीक्षा करने

लगते हैं। ऐसी दशा देख विद्रोही कवि मायूस हो जाते हैं और हमारे युग का स्थाई भाव मुठभेड़ नहीं बल्कि समझौता ही तो है।

मैं देख रहा हूँ कि जुल्म के सारे सबूतों को मिटाया जा रहा है

चंदन चर्चित मस्तक को उठाए हुए पुरोहित और तमगों से लैस

सीना फुलाए हुए सिपाही महाराज की जय बोल रहे हैं।

मैं कितना भी सोचूँ विद्रोही पर या उनकी कविताओं पर लिखते हुए भावुक हो ही जा रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि भावुकता तर्क का शत्रु होती है। विद्रोही की कविताओं पर या विद्रोही के व्यक्तित्व पर लिखते हुए ऐसा लगता है कि इससे सही काम और कोई हो नहीं सकता जो अब

तक किया गया है। विद्रोही बनना बड़ा कठिन और लगभग नामुमकिन है ठीक इसी तरह विद्रोही की रचनाओं पर लिखते समय हाड़-मांस के विद्रोही को नज़र-अंदाज़ नहीं किया जा सकता है।

अतिशयोक्ति लगेगी लेकिन अपने प्रिय कवि पर लिखते हुए ये कह सकता हूँ कि अपना आधा जीवन जेएनयू कैम्पस में बिताने वाले रमाशंकर यादव विद्रोही क्या किसी दिन अचानक जेएनयू की जंगल-झाड़ियों और पगडंडियों से प्रकट होते दिखलाई देंगे और गंगा ढाबा में चाय की चुस्कियां लेते या बीड़ी पीते हुए नवीनतम विचारों से लैस विद्यार्थियों की चेतना को झकझोरते मिलेंगे...बेशक ऐसा होगा नहीं लेकिन काश ऐसा हो पाता!

सम्पर्क: अनवर सुहैल, टाईप प्ट.3ए ऑफिसर्स कालोनी, पो. बिजुरी, जिला. अनूपपुर, मप्र-484440 मोब. 9907978108,

sanketpatrika@gmail.com